पावनपर्व : रक्षाबन्धन

आचार्य विद्यानन्द मुनि

प्रकाशक

कुन्दकुन्द भारती

18-बी, स्पेशल इंस्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली-110067

पावनपर्व : रक्षाबन्धन

लेखक : आचार्य विद्यानन्द मुनि

प्रकाशक : कुन्दकुन्द भारती न्यास, नई दिल्ली-110067

मुद्रक : काईज़न आफसैट, नई दिल्ली

संस्करण : 23 अक्टूबर, 2014 ई., 1000 प्रतियाँ

© प्रकाशक के पास सर्वाधिकार सुरक्षित

प्राप्ति.स्थल

कुन्दकुन्द भारती न्यास,
18-बी, स्पेशल इंस्टीट्यूशनल एरिया,
नई दिल्ली-110067
दूरभाष : 26564510, 26513138

PAAVANPARVA : RAKSHABANDHAN
by **Acharya VIDYANAND MUNI**

Publisher : Kund Kund Bharti Trust, 18-B, Special Institutional Area, New Delhi-110067 (India)

Edition : 23rd October, 2014, 1000 Copies

पावनपर्व : रक्षाबन्धन

वात्सल्य पूर्णिमा : रक्षापर्व– 'रक्षाबन्धन' राष्ट्र का मैत्रीपर्व है, सौहार्द महोत्सव है। देश का द्विजाति समुदाय इसे उपाकर्म और संस्कार-विशुद्धि पर्व के रूप में मनाता है। जैन जगत् के लिए यह पर्व दिन 'वात्सल्य पूर्णिमा' के नाम से स्मरण किया जाता है। मल्लिनाथ तीर्थंकर के समय में हस्तिनापुर के राजा पद्मराय के राज्य में मुनिमहाराजों पर दारुण उपसर्ग आया था और मुनि विष्णुकुमार द्वारा उसका उपशम श्रावण पूर्णिमा के दिन किया गया था, इसीलिए इसे 'रक्षापर्व' कहते हैं। इस दिन दक्षिण हाथ की कलाई पर 'रक्षासूत्र' बाँधने की मंगलप्रथा है। प्रत्येक घर और नगर में इस दिन बड़े उत्साह से बहिनें अपने भाइयों को 'राखी' बाँधती हैं और मोदक-मिष्टान्न तथा दक्षिणा प्राप्त करती हैं। किन्तु इतने मात्र से इस पर्व को सीमित नहीं किया जा सकता। 'रक्षाबन्धन' इन दो शब्दों में व्यापक अर्थ की विशाल सम्भावनाएँ निहित हैं। अहिंसक परिभाषा के अनुसार उक्त पर्व का प्रथम शब्द 'रक्षा' है और उत्तर शब्द 'बन्धन'।

रक्षा किसकी?– 'रक्षा' और 'बन्धन' में 'द्वन्द्व' समास मानें तो समानकोटि पर दो भावनाओं को क्रियान्वित करने

की ओर 'रक्षाबन्धन' का संकेत है। एतावता रक्षा माने— प्राणिमात्र की रक्षा, आत्मरक्षा, देश, जाति और विश्व की रक्षा, मानव-मात्र की रक्षा, अपने व्रतों की रक्षा, मिथ्या नहीं बोलकर वचन की रक्षा, अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह व्रतों की रक्षा तथा साहित्य, सस्कृति, समाज, अल्पसंख्यक और विदेशियों की रक्षा। रक्षा अपने राष्ट्र की सीमाओं की, सैनिकों और मर्यादाओं की। प्रतिक्षण मन में, वचन में, काय में जो अविशुद्ध तत्त्व पल रहे हैं उनके पाशविक आक्रमण से अपने श्रेयोमार्गी आत्मा की रक्षा। गौ हमें दूध देती है, बछड़ा देकर कृषि कर्म में सहयेाग देती है, उसमें दूध-घी से राष्ट्र के जीवन में पुरुषार्थ की क्षमता आती है, ऐसे परम उपयोगी, परोपकारी कामधेनु पशु की रक्षा, हिन्दी, अंग्रेजी, उर्दू और प्रान्तीय भाषाओं के विवाद से हमारी सार्वभौम भावात्मक एकता खतरे में है, उस भावात्मक एकता की रक्षा, अन्न की दुष्कर उपलब्धि और महँगाई के विरुद्ध व्यापक परिमाण में अन्न की रक्षा। अतिचारों से, अपवादों से, सप्तव्यसनों से आत्मरक्षा। इसप्रकार 'रक्षा' का विशाल अर्थ परिकल्पित कर जीवन के बहुमुखी विकास में बाधक तत्त्वों से अपने देश, धर्म, संस्कृति की रक्षा करना आज के दिन की शपथ है।

व्रत ग्रहण करें— सदाचारी मानव चींटी को भी बाधा नहीं पहुँचाते (रक्षा करते हैं) किन्तु अपने देश, जाति और संस्कृति की रक्षा के लिए बड़े से बड़े शत्रु को भी नष्ट करने में पीछे नहीं हटते। अतः आज के दिन स्त्रियाँ अपने शील की रक्षा का व्रत लें, विद्यार्थी पठन-पाठन में मनोयोग

का व्रत ग्रहण करें, गृहस्थी स्वाध्याय की रक्षा का संकल्प पढ़ें और मुनि अपनी शिथिलाचार से रक्षा करने को तत्पर हों। राष्ट्र पर आये हुए इस अन्नसंकट के समय में धनिक और व्यापारी अन्न से देश के क्षुधाक्लान्त, महँगाई-पीड़ित कोटि-कोटि जनों को उबारें और सारे राष्ट्रजन अपने सदाचार की, चारित्र की रक्षा करें।

अन्न संकट और कृषि की परम्परा– भारतीय आर्य जो इस कर्मभूमि के प्रथम कृषक हैं, कृषि-कौशल के मार्ग-द्रष्टा हैं, जिन्हें आदिनाथ भगवान् द्वारा प्रर्तित अन्नकूट पर्वों का परम्परा-प्राप्त अनुभव है, आज भयंकर अन्नसंकट से गुज रहे हैं और जनसाधारण को भरपेट आहार मिलना कठिन हो गया है। अन्न के अभाव की पूर्ति के लिए सरकार की ओर से मत्स्यपालन, कुक्कुटपालन और मांस-भक्षण, अण्डा-भक्षण को प्रोत्साहन दिया जा रहा है। 'गोवध' को चालू रखते हुए इन क्षुद्र मत्स्यकुक्कुटपालन से राष्ट्र को मांसाहारी और असात्विक बनाने के ये प्रकार भारतीयता के मूल में असिसंचालन है। जब विश्व में शाकाहारियों की संख्या बढ़ रही है, उस समय विदेशों में परित्यक्त हो रहे अण्डा-मांस निषेवण को 'उद्योग' के नाम से प्रोत्साहन देना राष्ट्र का नैतिक वध करने के समान है। रक्षा के व्यापक अर्थ पर चित्रण करनेवालों को अहिंसा और जीवरक्षा को दृष्टिपथ में रखकर अपनी कलाई पर रक्षा अहिंसा का यह बन्धनसूत्र बाँधना चाहिए।

परस्परोपग्रहो जीवानाम्–गोरक्षा तथा कृषि-उत्पादन पर विशेष श्रम करना आवश्यक है। और यदि विदेशों के

आयात पर निर्भर रहकर तथा क्षुद्र मत्स्य-मुर्गी-उद्योगों की पापवृत्तियों को उत्साहित कर राष्ट्र के कर्णधार निश्चिंत रहें तो वह समय दूर नहीं रहेगा जब थैले भर नोटों में पॉकेट भर अन्न मिलना कठिन हो जायेगा। मनुष्य अन्नजीवी प्राणी है। वह नंगा रह सकता है, बिना मकान प्रसाधनोपकरण और वस्त्रों के मर नहीं सकता। प्रासादों के अभाव में झोपड़ी, वृक्ष की छाया में गुजर कर सकता है। किन्तु अन्न के अभाव में जीवित नहीं रह सकता। 'अन्नं वै प्राणिनां प्राणः' प्राणियों के प्राण अन्न-निर्भर हैं। उस अन्न का उत्पादन बढ़ाकर ही राष्ट्र के जीवन की रक्षा की जा सकती है और रक्षा शब्द की तभी सार्थकता हो सकती है। केवल मणिबन्धन पर कुंकुम और हरिद्रारस में डूबे हुए धागे को बांधने मात्र से 'रक्षा' शब्द की चरितार्थता नहीं हो सकती। सामूहिक रूप से एक दूसरे की सामर्थ्य-योग्यतानुसार सहायता करना 'परस्परोपग्रहो जीवानाम्' को व्यवहार में लागू करना 'रक्षा' शब्द का अर्थ है।

बन्धन तो नियमन है– 'वात्सल्य पूर्णिमा' के उत्तर पद में 'बन्धन' शब्द है। यहाँ 'बन्धन' का अभिप्राय है नियमन, अनुशासन। अपने मन को, अपनी पंचेन्द्रियों को बन्धन में (नियमन में) रखना, अनुशासित रखना। नदी दो किनारों से बँधी हुई है अतएव उसका जल समुद्र तक पहुँच पाता है, खेतों को नहरों और नालियों से उर्वर बनाता है। यदि वह बन्धन में न हो तो अपनी मंजिल को नहीं पा सकता, प्रत्युत अनिश्चित प्रवाह से गांवों को डुबा सकता है, खेती को उन्मूलित कर विनाश उपस्थित कर

सकता है। अतः बन्धन अर्थात् नियमों और व्रतों से अपने आत्मानुशासन को चारित्रमय करना। मानवसमाज बँधा हुआ है प्रेम से, संस्कारों की डोर से, जातीयता के पवित्र ऊँचे आदर्शों से। बन्धन से निश्चित मार्ग पर चलने में सुविधा होती है और निर्बन्धन स्वच्छन्दता की ओर कदम बढ़ाता है। माता अपना स्तन पिलाकर शिशु को पालती-पोसती है, इसमें ममता का बन्धन ही हेतु है। महानदियों पर बन्धन (बाँध और सेतु) लगाने से उनकी उपयोगिता बढ़ जाती है। तिनके-तिनके को बल देकर रस्सियाँ बँटते हैं जिनसे गजों को बाँध दिया जाता है। यह बन्धन संगठन का रूप है, शक्ति और ऊर्जा का अवतार है। निर्बन्ध हुए मुनि भी महाव्रतों के बन्धन में अपने अट्ठाईस मूलगुणों का पालन करते हैं। आश्चर्य है और ग्रन्थियों (बन्धनों)-नियमों की शृंखला से मुक्त होकर भी वे निर्ग्रन्थ अथच मोक्षगामी होते हैं। ऐसे बन्धन भी मोक्ष देते हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपने नैतिक बन्धनों में बँधा हुआ है। यदि बन्धनों को खोल दिया जाए तो हत्या, अपराध, चौर्य और लूट-खसोट की प्रवृत्ति बढ़ जाए, इसलिए राष्ट्र में शासन और न्यायालयों के बन्धन हैं। सीमाओं की चौकसी न की जाए तो शत्रु के आक्रमण राष्ट्र के जीवन को विषाक्त कर सकते हैं, इसलिए सीमान्तों पर सतत जागरूक प्रहरियों की रक्षापंक्ति का बन्धन है। इस प्रकार रक्षा करना जानता है, वही पंचेन्द्रियों को बन्धन में रखकर मुक्त हो सकता है।

बन्धन से मुक्ति पाने की साधना– बन्धन में से मुक्ति पाने का यह अद्‌भुत प्रकार है। सूत्ररूप में जो 'राखी'

मणिबन्ध पर बाँधी जाती है, वह उत्तम गुणों की रक्षा और मन, वचन, काय को नैतिकता के बन्धनों में नियमित रखने के लिए दिया हुआ (अथवा स्वीकारा हुआ) प्रतिज्ञावाक्य है। इस सूत्र को कलाई पर इसलिए बाँधते हैं कि कार्य करनेवाले कर्मशूर अपने हाथ पर बँधी राखी को देखकर स्वीकार किए हुए कर्त्तव्यों को सतत स्मरण रखें। यह सूत्र प्रतिक्षण आँखों के सामने रहे और ध्येय की पगडंडियों पर अग्रसर करता रहे। अभी हम दूसरे देशों को राखी भेजते हैं, रक्षा चाहते हैं। किसी से 'अन्न' की याचना करते हैं तो कहीं से औद्योगिक विकास के उपकरणों का आयात करते हैं। हमारी यह स्थिति 'कर्मवती' द्वारा 'हुमायूँ' को भेजी गई राखी के समान है जो आज भी हमारे चिरन्तन दैन्य को पुकार-पुकारकर ललकार रही है। हमारे स्वाभिमान को चुनौती देती है। रक्षा के जिम्मेदारों को हरिद्रा में डूबा हुआ यह धागा, जो शौर्य का प्रतीक है, इस मजबूती से कलाई पर बाँधना चाहिए कि उसका दबाव प्राणवाहिनी धमनियों को उत्तेजित कर दे। इस धागे को बाँधकर सतियों के शील को बल मिले, जीवन में नियमितता का आविर्भाव हो। चौराहे की हरी-लाल रोशनी हमारी गति को सुरक्षित रखने के लिए है और राखी के हरे-लाल डोरे हमारे उत्तरदायित्व के चैतन्यबोध के लिए है। अक्षर जब अर्थ से अनुबन्ध करते हैं तो उन्हें क्रमविशेष से बँधना पड़ता है, तभी लोक में उनकी 'सार्थक शब्द' संज्ञा होती है। यों 'ककहरे' के अक्षर निरक्षर हैं। मात्राओं के प्रयोग लयरहित हैं। हम रक्षा के क्षेत्र को विश्व के सीमान्तों तक

विस्तार दें, 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के चारित्रिक जाप्य जपें और अशेष मानव जगत् को प्रेम के, सौहार्द के बन्धन में बाँधें, तो हमारी कलाई पर बंधी राखी के फूल मुस्करा उठेंगे और 'बन्धन', 'कर्त्तव्य' का समानार्थी बन जाएगा।

अन्यथा शरणं नास्ति त्वमेव शरणं मम।
तस्मात्कारुण्यभावेन रक्ष रक्ष जिनेश्वर॥

'स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्,
नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता।
सर्वा दिशो दधति भानि सहस्ररश्मं-
प्राच्येव दिग्जनयति स्फुरदंशुजालम्॥'

–भक्तामर स्तोत्र

रक्षाबन्धन की कथा– एक समय पंचगिरि पर्वत पर अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीर का समवशरण आया हुआ था। समवशरण के प्रताप से उस क्षेत्र में बिना ऋतु के वसन्त का आविर्भाव हुआ। फलों और पुष्पों से वनावली उल्लसित हो उठी। शाश्वत विरोधी पशुओं एवं पक्षियों ने वैरभाव का विस्मरण कर दिया। सिंह और गौ एक स्थान पर प्रीति और वात्सल्य से मिलने लगे। गाय अपनी सींगों से सिंह के अयालों को सहलाने लगी और काँटेदार झाड़ी में फँसे हुए गौ के पुच्छ को अतीव मृदुता के साथ (कंघी करता हो जैसे) केसरी सुलझाने लगा। यह अद्भुत, अतर्कित व्यापार देखकर वनपाल को महान् विस्मय हुआ और वह त्रिलोकीनाथ भगवान् के समवशरण को समझकर 'राजगृही' के तत्कालीन प्रतापी सम्राट् श्रेणिक की सेवा में पहुँचा।

वनपाल ने विनय और नम्रता भरे स्वर में राजराजेश्वर श्रेणिक नृपति से कहा कि पृथ्वीनाथ ! पुण्यों का उदय पराकाष्ठा पर है, वृक्ष स्वयं अभीष्ट फल देने लगे हैं। हे भूमिपते ! बिना ही याचना के अचिन्त्य चिन्तामणि की प्राप्ति हुई है। आपके पंचगिरि शैल पर भगवान् महावीर का समवशरण आया हुआ है। सुनते ही राजा श्रेणिक भगवान् त्रिलोक-पूज्य वर्धमान की वन्दना के लिए उठ खड़े हुए। उन्हें सात्त्विक रोमांच हो आया और आनन्द से पुलकायमान होकर भगवान् के समवशरण की दिशा में सात पैर चलकर उन्होंने साष्टांग नमस्कार किया। इस शुभ संवाद को फैलते देर नहीं लगी और नगर में 'आनन्द-भेरी' के निनाद गूँज उठे। राजा श्रेणिक अविलम्ब पदाति चल पड़े और समवशरण स्थान पर पहुँचकर उन्होंने प्रशान्त वीतरागमुद्रा में विराजमान भगवान् के दर्शन कर अपने को कृतपुण्य माना और मन, वचन, काय से स्तुति-पूजन किया। तदनन्तर भगवान् के उपदेशामृत का पानकर तृप्त हुए राजा ने गौतम गणधर से स्तुति-वन्दना कर 'रक्षाबन्धन' के विषय में जिज्ञासा की। राजा की धार्मिक रुचि से प्रसन्न हुए गौतम गणधर ने कहा–

जैन मुनि अकम्पनाचार्य– कुरुजांगल प्रदेश में 'हस्तिनापुर' नगर था। उसमें महापद्म नामक राजा राज्य करता था। राजा के पद्मराय और विष्णुकुमार दो पुत्र थे। यथासमय राजा के वैराग्य धारण करने पर ज्येष्ठपुत्र पद्मराय राजसिंहासन पर बैठा और मोक्षसुख

के अभिलाषी विष्णुकुमार ने मुनिदीक्षा ले ली। उस समय मालवदेश की राजधानी उज्जयिनी में 'श्रीवर्मा' राज्य करता था। उसके बलि, नमुचि, वृहस्पति और प्रहलाद नामक चार मन्त्री थे। वे चारों ही ब्राह्मणधर्म के पालक और जैनमत के द्वेषी थे। एक बार अकम्पनाचार्य नामक जैनमुनि 700 शिष्यों सहित उज्जयिनी के बाह्योद्यान में आकर ठहरे। श्री अकम्पनाचार्य द्वादशांग के विद्वान और निमित्त ज्ञानी थे। उन्होंने अपने निमित्त ज्ञान से आगमिष्यत् संकट की सम्भावना कर सम्पूर्ण शिष्यों से कहा कि यहाँ के मन्त्री अभिमानी और मिथ्यादृष्टि हैं अतः किसी से किसी प्रकार का विवाद नहीं करना और विवाद का प्रसंग उपस्थित होने पर 'मौन' धारण कर ध्यानावस्थित हो जाना। शिष्यों ने 'एवमस्तु' कहकर गुरुमहाराज को आज्ञापालन का आश्वासन दिया किन्तु उस समय 'श्रुतकीर्ति' नाम के मुनि नगर में आहार लेने गये हुए थे। गुरु के इस आदेश को वह नहीं जान सके। जब श्रावकों को मुनिसंघ के शुभागमन का समाचार मिला तब वे पंक्ति बाँधकर, हर्ष से उल्लसित हो समूह के समूह दर्शनार्थ आने लगे। राजा ने भी प्रासादशिखर पर खड़े होकर जनसमूह को नगर से बाहर अलंकृत, आभूषित जाते देखा और यह जानकर कि दिगम्बर श्रमण उसके नगर को पवित्र करने स्वयं पधारे हैं, मन्त्रियों को साथ ले दर्शनार्थ चल पड़ा। उन मंत्रियों ने मुनियों की निन्दा करते हुए उन्हें 'अदर्शनीय' कहा। किन्तु 'अमृत देखे अमर न होय, विष देखे से मरे न

कोय' कहकर राजा ने मंत्रियों को निरुत्तर कर दिया। स्वयं अकम्पनाचार्य और उनका समस्त संघ राजा तथा मन्त्रियों को आता देखकर आसन बाँधकर ध्यानस्थ हो गया। राजा उनको ध्यानयोग में देखकर प्रसन्न हुआ और प्रत्येक को प्रणाम निवेदन कर लौट आया। किन्तु मुनियों की ध्यानस्थ मुद्रा को मन्त्रियों ने दर्प और पाखण्ड समझा तथा अपने मन के कषायानुबन्ध से प्रभावित होकर वे मुनियों के व्यवहार को राजा का अपमान बखानने लगे। इसी समय 'श्रुतिकीर्ति' मुनि आहार लेकर नगर से लौट रहे थे। उन्होंने गुरुमहाराज की आज्ञा नहीं सुनी थी अतः जब मन्त्रियों ने उनके लिए तिरस्कारकारी शब्दों का प्रयोग किया और शास्त्रार्थ का आह्वान किया तब वह उदासीन होकर उसे अस्वीकार नहीं कर सके। परन्तु मुनि के शास्त्रज्ञान और युक्तिबल के आगे, सूर्यताप से मेघों की तरह अल्पकाल में ही वे मन्त्री उच्छिन्न हो गये और कुछ बोल नहीं सके। जय-पराजय में समभावी वीतराग मुनि महाराज मन्त्रियों को निरुत्तर कर संघ में आ गये। श्रुतिकीर्ति से मन्त्रियों के साथ शास्त्रार्थ की बात सुनकर गुरु अकम्पनाचार्य भावी उपसर्ग की आशंका से अस्वस्थ हो उठे। सम्पूर्ण संघ पर आनेवाले 'उपसर्ग' को टालने के लिए गुरु से आज्ञा लेकर श्रुतिकीर्ति अकेले ही संघस्थान से निकलकर दिन में जहाँ शास्त्रार्थ हुआ था, उस स्थान पर आ गये। गुरु अकम्पनाचार्य का निमित्त-ज्ञान अव्यर्थ था। रात्रि का अन्धकार घनीभूत होने पर वे चारों मन्त्री वैरनिर्माण के

लिए नग्न खड्ग लेकर संघस्थान की ओर चल पड़े। मार्ग में ध्यानमुद्रा में अवस्थित मुनि श्रुतिकीर्ति को देखकर उनका हिंसक भाव जाग उठा और 'इसी ने हमें नीचा दिखाया है' कहकर मारो, मारो चिल्लाने लगे और खड्ग प्रहार के लिये तैयार हो गये। किन्तु प्रहार को उठे हुए हाथ ऊपर ही उठे रह गये, वनरक्षक देवता ने उन्हें कीलित कर स्तब्ध कर दिया। प्रातःकाल यह सब सुनकर राजा वहाँ उपस्थित हुआ और उनके कुकृत्य से क्रोधित हो, उन्हें गर्दभारूढ़ कर राज्य से निर्वासित कर दिया। इस प्रकार मुनियों का उपसर्ग दूर हुआ।

उज्जयिनी से निर्वासित चारों मंत्री हस्तिनापुर पहुँचे और वहाँ के राजा पद्म को युक्तिपूर्वक प्रसन्न कर सम्मानित पदों पर नियुक्त हो गए। पद्म राजा का 'सिंहबल' नामक एक शत्रु राजा था। बल में सिंह के समान होने से वह 'सिंहबल' के नाम से प्रसिद्ध था। राजा को विशेष प्रसन्न करने के लिए 'बलि' ने उसे बन्दी बनाकर पद्म के सम्मुख उपस्थित किया। 'पद्म' बलि के पौरुष से प्रसन्न हुआ और इच्छावरदान मांगने को बलि से कहा। बलि ने किसी उपयुक्त समय के लिए उस वरदान को राजा से सुरक्षित करा लिया।

कुछ दिनों बाद संघ सहित अकम्पनाचार्य हस्तिनापुर पहुँचे और 'चातुर्मास' योग धारण किया। चारों (बलि, नमुचि, वृहस्पति और प्रहलाद) अपने अपमान को नहीं भूले थे और किसी उपाय से मुनियों को पीड़ित करने की इच्छा

रखते थे। इसी ऊहापोह में वलि को अपना पदम राजा पर 'सिंहबल' को पराजित करने का उपकार तथा राजा द्वारा दिया हुआ वचन स्मरण हो आया। फलतः उसने राजा से सात दिनों के लिए राज्याधिकार माँग लिया। किसी अनिष्ट की आशंका से पदम कम्पित हो उठा किन्तु अपनी शपथ का निर्वाह करते हुए उसने वलि को एक सप्ताह के लिए शासक नियत कर दिया। शासक होने के तुरन्त बाद बलि ने मुनियों को उत्पीड़ित करने की योजना कार्यान्वित कर दी। उसने संघस्थान के चारों ओर विशाल यज्ञकुण्ड बनाया और उसमें अग्नि जलाकर पशुहोम और 'नरमेध' करना आरम्भ कर दिया।

उस समय अपने ऊपर दारुण उपसर्ग आया जानकर मुनियों ने आहार-पानी का त्याग कर दिया। हस्तिनापुर के वरदानी राजा पदम के भाई विष्णुकुमार (जो मुनि हो गए थे) के गुरुमहाराज श्रुतसागरजी उस समय मिथिला में वर्षायोग कर रहे थे। उन्होंने रात्रि में कांपते हुए श्रवण नक्षत्र को देखा और निमित्त ज्ञान से किसी अनिष्टकारी दुर्योग को जानकर उनके मुख से 'हा' शब्द निकल पड़ा। गुरु के मुख से 'हा' सुनकर पुष्पदन्त नामा क्षुल्लक ने गुरु महाराज से इसका कारण पूछा और यह जानकर कि संघ सहित अकम्पनाचार्य पर घोर उपसर्ग आया हुआ है, पुष्पदन्त ने गुरु के आदेश से विक्रिया ऋद्धिधारी और पदम राजा के सहोदर मुनि विष्णुकुमार के पास तत्काल प्रयाण किया। विष्णुकुमार को अपनी विक्रिया ऋद्धि का ज्ञान नहीं था किन्तु पुष्पदन्त द्वारा ज्ञात होने पर परीक्षार्थ

उन्होंने अपनी भुजा को फैलाया तो वह समुद्र का स्पर्श करने लगी। तत्काल वह हस्तिनापुर पहुँचे और पद्म को धिक्कारा। पद्म ने दुःखप्लावित स्वर में कहा– मेरे हाथ कटे हुए हैं। मैं बलि से वचन हारा हूँ प्रभो ! आप ही मेरी सहायता कर संघ को उबारिए। मुनि ने ऋद्धि प्रभाव से अपना रूप 'वामन' के रूप में परिवर्तित किया और बलि के यज्ञमण्डप में पहुँचे। 'अहोभाग्य' कहकर बलि ने वामनकाय ब्राह्मण से यथेच्छ वस्तु माँगने की प्रार्थना की। वामन ने तीन डग भूमि अपने पैरों से मापकर लेने का प्रस्ताव रखा। बलि उस छोटे कद के ब्राह्मण की इस याचना का अर्थ समझे बिना ही 'हाँ' कह बैठा और तब विराट रूप धारण करते हुए विष्णुकुमार ने एक डग सुमेरु पर्वत पर रखा और दूसरा मानुषोत्तर पर्वत पर। तीसरा डग भरने के लिए स्थान नहीं रहा और अभिभूत हुए बलि ने अपनी पीठ पर तृतीय पाद रखने की प्रार्थना की। वामन के उस विक्रम से पृथ्वी हिल उठी, आकाश में स्थित देवगण विस्मित हो स्तुति करने लगे। उन्होंने बलि को बाँध लिया। इस प्रकार मुनिसंघ का उपसर्ग दूर हुआ। स्वयं बलि ने पुनः मुनिवेष में आए हुए विष्णुकुमार से क्षमा प्रार्थना की। उसने हिंसा पर आधारित यज्ञों के यूप उखाड़ दिए। वध के लिए एकत्रित पशुओं के बन्धन खोल दिए और साथियों सहित भगवान् ऋषभनाथ के अहिंसा-धर्म को स्वीकार कर अपने को कृतार्थ किया। वह दिवस श्रावण शुक्ल पूर्णिमा का था। इस दिन मुनियों की रक्षा हुई, अतः इसे 'रक्षाबन्धन' कहते हैं। यूपों से बँधे हुए

खड्ग-प्रहार के प्रतीक्षक पशुओं को रक्षा मिली, जीवमात्र के प्रति अहिंसक वात्सल्य का प्रवाह तरंगित हुआ अतः इसे 'वात्सल्य पूर्णिमा' भी कहते हैं।

'धर्म यो बाधते धर्मो न स धर्मः कुवर्त्म तत्।
अविरोधात्तु यो धर्मः स धर्मः सत्य विक्रम॥'

—महाभारत (वन पर्व), 131/11

जो धर्म दूसरे धर्म को बाधा पहुँचावे, दूसरे धर्म से रगड़ पैदा करे, वह धर्म नहीं, वह तो कुमार्ग है। धर्म तो वह है जो धर्म का विरोधी नहीं होता।